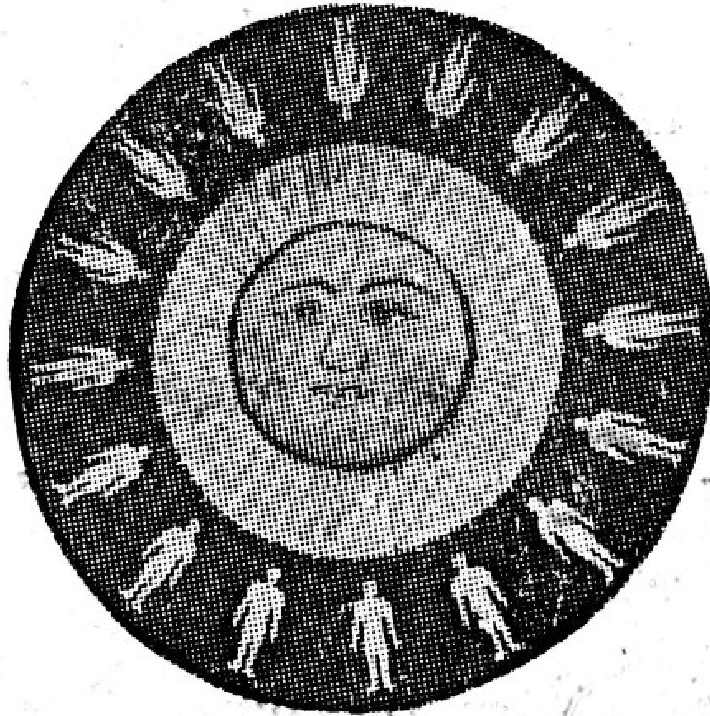
मानव कल्याण

सन्त कबीर की पहेलियाँ



मानवता मन्दिर,
सुतैहरी रोड, होशियारपुर (पंजाब)



परम सन्त, परम दयाल
पण्डित फकीर चन्द जी महाराज

सन्त कबीर की

पहेलियाँ

सत्संग परम सन्त परम दयाल पण्डित फकीरचन्द जी महाराज मानवता मन्दिर, होशियारपुर ।

२३ अक्तूबर, १९७३ ई० ।



ठगनीं का नैंना झमकावै,
तोरे कबिरा हाथ न आवै ।।

कद्दू काट मृदंग बनाया,
नींबू काट मजीरा ।
पांच तुरैया मंगल गावैं,
नाचै बालम खीरा ।।

भैंस पदमनी चूहा आशिक,
मेंडक ताल बजावैं ।
चोला पहिर गदहिया नाचै,
ऊँट विसन पद गावै ॥
रूपा पहिरे रूप दिखावै,
सोना पहिर रिझावै ।
गले डाल तुलसी की माला,
तीन लोक भरमावै ॥
आम चढ़े मछली फल तोरै,
कछुवा चुन चुन लावै ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो !
बिल्ली अर्थ लगावै ॥

राधा स्वामी !

छोटी आयु से राम को मिलने निकला था और मुझे इस बात की खोज थी कि मेरा मालिक या मेरा आधार कहां है । मौज हजूर दाता दयाल शिवव्रत लाल जी महाराज के चरन कमलों में ले गई, उन्होंने

यह सन्त मत मुझे सौंप दिया। उन्होंने कबीर साहब, गुरु नानक साहब और राधा स्वामी दयाल की महिमा गाई और सन्तों के मार्ग को बहुत ऊँचा बताया। सन्त मत की बानीं मुझे पढ़ने को दी। मैं एक साधारण हिन्दू, राम और कृष्ण को मानने वाला था। इस बानीं में सब का खण्डन था। इसको पढ़ कर मन पर एक चोट लगती थी कि मैं तो निकला था राम को मिलने के लिए और राम को ही यहां काल और माया बताया गया है, मैं कहां फंस गया। चूंकि हजूर दाता दयाल जी महाराज के रूप में मैं मालिक को मानता था, इस लिए उन पर तो मेरा विश्वास न टूटा, मगर बानीं की समझ नहीं आती थी। इसलिए मैंने प्रण किया था कि इस दिशा में सच्चा हो कर चलूंगा और जो कुछ मेरा अनुभव होगा संसार को बता जाऊँगा।

ऊपर के शब्द का अर्थ कौन समझेगा? हो सकता है कि जो कुछ मैंने समझा हो वह भी गलत हो, मुझे कोई दावा नहीं है। जो कुछ मैंने समझा है वह

दाता दयाल जी महाराज की दया से और आप लोगों के अनुभवों से समझा है। जब से मुझे यह पता लगा कि मेरा रूप लोगों के अन्तर प्रगट होता है और उन के कई प्रकार के काम कर जाता है। क्योंकि मैं नहीं होता तो मुझे ज्ञान हो गया कि मेरे अन्तर में भी जितने रूप रंग आदि उत्पन्न होते हैं, वह हैं नहीं, केवल छाया मात्र हैं और भासते हैं - हमारी जो आदि अवस्था है अर्थात् जो हमारी सुरत है वह इन को सत्य मान कर इनमें फंस जाती है। जब से मुझे यह समझ आई है तब से मैं इसका अर्थ समझने योग्य हुआ हूं।

कबीर साहब कहते हैं कि ऐ ठगनीं ! मैं तेरे हाथ नहीं आता। कबीर साहब का इस से क्या भाव है यह तो वही जानते होंगे, मैंने क्या समझा ? ठगनीं वह है जो किसी को अपने बस में कर लेती है। हम को अपने अन्तार में या बाहर में जितने दृष्य दृष्टि-गोचर होते हैं यह सब हमारी सुरत को अपनी ओर खेंचते हैं। माता, पिता स्त्री, बहिन, भाई, सन्तान,

राजा और परजा, मकान, ज़मीन और सम्पत्ति यह सब हम को अपनी ओर खेंचते हैं, यह सब ठग हैं। हमारे अन्तर में प्रकाश प्रगट होता है, शब्द प्रगट होता है, नाना प्रकार की रोशनियां नज़र आती हैं। यह सब चीजें हम को अपनी ओर खेंचती हैं। इस लिए ये सब ठग हैं। कबीर साहब कहते हैं कि ऐ ठगनीं ! अब तू मुझे भरमा नहीं सकती। क्यों ? मैं अपने विषय में जानता हूं, मैं ठगनीं में रहता हूं, परन्तु ठगनीं मुझे भरमा नहीं सकती। अपने अन्तर प्रकाश को देखता हूं और शब्द को सुनता हूं और उस वस्तु की खोज करता हूं जो प्रकाश को देखती हैं और शब्द को सुनती है। वह है वास्तविक फकीर, कबीर या नानक और वह है ज्ञात। अब यह ज्ञान हो गया कि मेरा जो रूप है वह और है और यह जो कुछ अन्तर या बाहर दिखाई देता है यह और है। मैं ही तो यह सब कुछ देखता हूं, तो जो चीज़ मुझे अपनी ओर खींचती है वह ठगनीं है। एक व्यक्ति रोता हुआ मेरे पास आता है वह भी मुझे अपनी ओर खींचता है, एक व्यक्ति खुश हो कर मेरे पास

आता है वह भी मुझे अपनी ओर खेंचता है।

जिस को यह ज्ञान हो जाता है कि जो चीज उस को अपनी ओर खींचती है वह ठगनीं है तो फिर वह उन में रहता हुआ भी उन में फंसता नहीं है। जिस को यह विश्वास हो जाता है कि मैं न शरीर हूं न मन हूं, न प्रकाश हूं और न शब्द हूं बल्कि मैं अकह, अपार, अगाध, अलख और अनाम हूं और इन सब में रहते हुए इनका साक्षी हूं तो फिर उसका ठगनीं के रूप में होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। मुझे तो ठगनी ने ठगा हुआ था। जब दाता दयाल जी की आर्ती करने गया था, वह भी तो ठगनीं ही थी। तुम लोगों की दया से मुझे यह समझ आई। दाता दयाल जी महाराज ने मुझ पर बहुत दया की। एक शब्द में उन्होंने मुझे लिखा था कि :—

चेते चेत चेत अभो चेत मेरे भाई ।।
राह से कुराह भया, भूला भरमाना।
कहां बसे कहां नसे ठौर न ठिकाना ।।

गुरु ने तुझे उपदेश दिया
और तुझे चेताया।
सन्त पन्थ धार हिये
कटे मोह माया।

यह भेद और यह सार समझने के लिए मुझे यह गुरु पदवी उन्होंने दी थी। अब बात मेरी समझ में आ गई। जब किसी को यह ज्ञान हो जाता है और बात उसकी समझ में आ जाती है तो फिर वह कहता है कि :—

ठगनीं का नैंना झमकावै।
तोरे कबीरा हाथ न आवै।

फिर वह इस ठगनीं में फंसता नहीं है, किन्तु तुम लोग फंस जाते हो। कैसे ? तुम्हारे अन्तर जब बाबा फकीर का या और किसी गुरु का रूप प्रगट हो जाता है तो तुम उसे सत मान कर उस में फंस जाते हो।

कद्दू काट मृदंग बनाया,
नीम्बू काट मजीरा ।
पांच तुरैया मंगल गावैं,
नाचै बालम खीरा ॥

कद्दू है शरीर और निम्बू है सिर। योगी लोग शरीर में कोई गुदा के स्थान पर, कोई इन्द्री के स्थान पर, कोई नाभि में ग्रौर कोई हृदय में ग्रभ्यास कर के ग्रपने अन्तर नजारे देखते हैं। वह नजारे क्या हैं ? ठगनीं।

निम्बू अर्थात् सिर में शब्द होते है, हम उनको प्रेम से सुनते हैं। हमारी सुरत जो वास्तव में इनकी साक्षी है इसको ये सब ग्रपनी ग्रोर खेंचते हैं। सुरत इन में खुशो लेती है ग्रौर फंस जातो है। सुरत को कौन फंसाता है ? ठगनीं।

कद्दू और निम्बू का मैं यह अर्थ समझता हूं। कबीर साहब का क्या भाव है, यह वह जानते होंगे। तभी तो मैं कहता हूं कि सन्तों ने ऐसी ऐसी बानियां

लिखी हैं कि संसार उनको आश्चर्य समझ कर उनकी ओर खिच जाए । अपने आप को तो शायद ही किसी को समझ आई हो किन्तु दूसरों को घेर कर गुरु के दरबार में नाम दिलाने ले जाते हैं । गद्दी का तो मैं नाम नहीं लेता किन्तु मुझे मालूम हुआ है कि जो आदमी लोगों को इकट्ठा कर के नाम दिलाने के लिए ले जाते हैं उन को प्रति चेला पांच रुपए दिए जाते हैं । यदि यह सच्च है तो तुम आप सोचो कि जहां यह दशा है वहां सन्त मत की शिक्षा का क्या बनेगा ? इस लिए मैं अनामी धाम से फकीर के चोले में सन्त मत की शिक्षा को साफ करने के लिए आया हूं । मैं ने देहली दुशहरा के सत्संग में सन्त कृपाल सिंह जी महाराज और मुनि सुशील कुमार जी के सामने कहा था कि मैं सन्त सतगुरु वक्त हूं और समय की आवश्यकता के अनुसार शिक्षा दे रहा हूं । मेरी नीयत बिल्कुल साफ है फिर भी यदि मैं गलती पर हूं ता मैं दोषी नहीं हूं । हजूर दाता दयाल जी महाराज और हजूर सावन सिंह जी महाराज ने मुझे यह काम करने का आदेश दिया था । मैंने तो उनसे

से यह काम नहीं मांगा था। मैं तो यह काम करना नहीं चाहता था और इसी के लिए मैं हजूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के दरवार में गया था, उन्होंने यह काम करने का आदेश देते समय कहा था कि फकीर! निर्भय हो कर काम कर, मैं तुम्हारा सहायक रहूंगा। मैं ने तो जब मुझे होश आई १५ दिन को छोड़ कर सुनाम स्टेशन पर १९१५ से लेकर १९३५ तक सत्संग नहीं कराया। क्यों? संसार सचाई सुनने के लिए तैयार नहीं किन्तु जब मेरे सिर पर यह काम आ गया तो मैंने अपने कर्तव्य को पूर्णतया निभाया।

भैंस पदमनीं चूहा आशिक,
मैंडक ताल बजावै।
चोला पहिर गदहिया नाचै,
ऊँट विष्ण पद गावै॥

मुझे नहीं पता कि कबीर साहब का इस से क्या अभिप्राय है? मैं ने जो समझा मैं कहता हूं। तुम शब्द सुनते हो और साधन करते हो उस से क्या

होता है ? तुम्हारी पांच ज्ञानेन्द्रियां उसमें आनन्द लेती हैं और खुश होती हैं। भैंस है तमोगुन। स्थूल प्रकृति की जितनी चीजें हैं वह सब अपनी ओर खींचती हैं, उन को चूहा अर्थात् मन ही तो पसन्द करता है। अब देखो मन्दिर में नया भवन बन रहा है, इसमें टाइल लगेंगी, चिप्स के फर्श डालें जा रहे हैं, मन इन को देख कर खुश होता है, यह हैं भैंस पद्‌नी और चूहा आशिक। मेंडक काल का रजोगुणीं अंग है। यह खुश हो कर नाचता है। यह भगत लोग तिलक लगा कर, गले में तुलसी की माला डाल कर खुश होते हैं। साधु भगवें कपड़े पहन कर और स्वांग बना कर फिरते हैं। यह माया है और यह गधे का नाचना है। खड़ताल बजाना और छैंने बजाना क्या है ? ऊंट का विष्ण पद गाना। हमारा जो अलख, अगम और अनाम रूप है, वह मन के साथ शामिल होकर आनन्द लेता है।

रूपा पहिरे रूप दिखावे,
सोना पहिर रिझावें।

गले डाल तुलसी की माला,
तीन लोक भरमावैं ।।

अभ्यासी आदमी के अन्तर सफेद रंग की या सुनहरे रंग की या और कई प्रकार की रोशनियां पैदा होती हैं । अब देखो महात्मा दयाल दास के अन्तर प्रकाश और शब्द प्रगट होता है, लोग समझते हैं कि यह बहुत बड़ा सन्त है । यह भी संसार को एक प्रकार का भरमाना ही है । सतगुरु भी ऐसा ही करते हैं । कोई कहता है कि हम बीन सुनते हैं और कोई कहता है कि हम सत लोक तक जाते हैं, कोई कहता है कि हम रारंग सारंग सुनते हैं, यह सोना और रूपा क्या है ? सफेद रंग की रोशनी । गुरु लोग नाना प्रकार के स्वांग बना कर अनेक ढंगों से लोगों को भरमा कर अपने चेले बनाते हैं और अपने पीछे लगाते हैं । देखो मैं किसी का गुरु नहीं बना ।

आम चढ़ै मछली फल तोड़े
कछुआ चुन चुन लावैं ।

कहै कबीर सुनो भाई साधो,
बिल्ली अर्थ लगावै ॥

हम मछली रूपी अपनी सुरत को शब्द के साथ ऊपर चढ़ाते हैं और मन के साथ आनन्द और मस्ती लेते हैं। यह सब क्या है ? माया। यह सब चीज़ें हमारी सुरत को अपनी ओर खींचती हैं और अपने जाल में फंसाती हैं। भक्ति, योग, ज्ञान, मकान और सन्तान यह सब चीज़ें सुरत को फंसाती हैं। कबीर साहब कहते हैं कि कोई विरला ही इस बात को समझेगा। किन्तु मेरा अनुभव बताता है कि जब तक तुम्हारा शरीर है तुम ठगनी से बाहर नहीं जा सकते। कहना और बात है और क्रियात्मिक जीवन और बात है। तुम्हारे अन्तर स्थूल, सूक्ष्म और कारण माया की सब चीजें मौजूद हैं, इनका आनन्द लो किन्तु इन में फंसो नहीं। जिस देश में तुम रहते हो उस देश के कानून का तुम उलंघन नहीं कर सकते। यह प्रकृति का नियम है। बाल-बच्चे, स्त्री, मकान और सम्पत्ति आदि सब कुछ होते हुए इनसे खुशी लो किन्तु

इन में फंसो नहीं। इनके रूप को समझो। ऋषि याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि पुत्र, पुत्र के लिए प्यारा नहीं है, आत्मा के लिए प्यारा है। भाई, भाई के लिए प्यारा नहीं है आतमा के लिए प्यारा है। ऐसे ही बाकी चीजों के लिए समझो। ईश्वर जो हमारा Self है वह आनन्द लेता है। संसार से भाग कर तुम जाओगे कहां ? इस लिए संसार में रहो, यहां की प्रत्येक चीज में खुशी लो किन्तु इसमें फंसो नहीं। यह सारा प्रकृति का खेल है।

मालिके कुल ने तुम को यहां खुश रहने के लिए भेजा है, इस लिए हर चीज का आनन्द लेते हुए खुश रहो। यही जिन्दगी का ध्येय है और इसी का नाम जीवन मुक्त अवस्था है। अपने रूप का ज्ञान रखो कि हम अकह, अपार, अगाध और अनाम हैं। हम यहां आ कर चक्कर में फंस गए। फिर गुरु मिलता है। सत्संग कराता है। अनुभव कराता है। फिर उस को ज्ञान हो जाता है।

परम सन्त पूरन धनो हजूर दाता दयाल जी

महाराज ने अपनी अद्‌भुत उपासना योग नामी पुस्तक में लिखा है कि साधन करो। जब अन्तर में बीन बजने लगे तो फिर किसी गुरु की खोज करो। जो तुम को अन्तर का भेद बताए और ज्ञान दे। जिस ज्ञान का संकेत दाता दयाल जी महाराज ने दिया है। वह ज्ञान मैं दे रहा हूं और यही कबीर साहब ने कहा है।

हंसा छोड़ो करम की आशा,
काल कर्म सब जगत नचावै,
फिर फिर करे गिरासा।
उपजन विनसन कर्म ही कहिए,
कर्म ही जगत विनाशा ॥

जो कुछ मैं ने कहा है उसका प्रमाण इस शब्द से मिलता है। जहां जहां गति होती है वहां कोई न कोई चीज पैदा हो जाती है और वहीं कर्म है। प्रकाश और शब्द भी कर्म से पैदा होता है।

कर्म ही काल व्याल पुनि कर्महि,
कर्म हि की सब त्रासा।

तो कर्म क्या है ? जहां गति होती हैं वहां Action होता है तो उसका कोई न कोई नतीजा निकलेगा । जब सह दल कंवल में मन इकट्ठा हो जाता है तो घण्टा और शंख बजता है । जब मन और इकट्ठा हो जाता है तो बादल की गर्जन या मृदंग की आवाज़ सुनाई देती है । जब और इकट्ठा हो जाता है तो रारंग सारग को आवाज़ आती है, मुरली की आवाज़ आती है ।

कबोर साहब कहते हैं कि यह सब कर्म की ही आस है । तो फिर मानव को क्या करना चाहिए ? कर्म का सब खेल नाटक है और यह संसार नाटक-शाला है । सहस दल कंवल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न यह सब नाटक हैं । इन में रहते हुए अपने रूप को समझो कि हम अलख, अगम और अनाम हैं । इस दुनिया को नाटकशाला समझ कर अपनी ज़िन्दगी का आनन्द लो । मैं जब दाता दयाल जी महाराज की आर्ती करने गया था तो उस समय मुझे समझ नहीं थी किन्तु किसी पूर्ण पुरुष का दिया हुआ संस्कार

आदमी की खोपड़ी में रहता है और समय आने पर उभर आता है। हज़ूर दाता दयाल जी महाराज ने मेरे नाम शब्द लिखा था।

यह जग नाटकशाला साधो,
यह जग नाटक शाला।

यह उन्होंने मुझे संस्कार ही तो दिया था और समय पर उसने अपना काम किया जैसे मैंने आप को अपने स्वप्न के बारे में बताया था। कि पहले महा-युद्ध में जहाज़ में बसरा जा रहा था और जब खाना खाने लगा तो सब्ज़ी की प्लेट में मांस मिला हुआ था। मैंने क्रोध में आ कर वह प्लेट फैंक दी। वही संस्कार ५० वर्ष पश्चात् स्वप्न में प्रगट हुआ। यदि सन्त की बानी सुनी हुई है और वह संस्कार दिमाग में मौजूद है तो सम्भव है वह आज प्रगट न हो। २ वर्ष, १० वर्ष, २० वर्ष पश्चात् वह अवश्य अपना प्रभाव करेगा।

सन्त डारिया बीज घट धरनी जीव के।
को समरथ जो जारि सके उस बीज को॥

सर्व यह है कि वह कोई पूर्ण पुरुष हो और बीज उस ने अच्छा डाला हो। आज कल जो बीज डाला जाता है वह कुछ और ही प्रकार का है।

यह जग नाटक शाला साधो,
यह जग नाटक शाला ॥
राजा रंक फकीर औलिया,
दृष्य विचित्र विशाला ॥

चाहे कोई राजा हो. फकीर हो, औलिया हो, अमीर हो अथवा गरीब हो, यह दृष्य जो नजर आते हैं यह सब नाटक हैं।

कोई ओढ़ै शाल दुशाला,
कोई के सिर कम्बल काला।
सुरत ने अद्भुत भेष बनाए,
नाचें नाच रसाला ॥

हमारी जो सुरत है वह मन की भी साक्षी है और शब्द और प्रकाश की भी साक्षी है किन्तु वह इन में फँस कर नाचती है।

गावें भाव दिखावें छिन्न २,
खेलें खेल निराला ।
ब्रह्मा वेद से रचा जगत को,
विष्णु गदा से पाला ॥
शिव संहार का साज सजावें,
साथ भूत बैताला ।
नाचौ कमला दुर्गा सारद,
काली छवि विकराला ॥

संसार में यह जो कुछ हो रहा है यह सब नाटक है । हम इस में फँस कर दुःख, सुख, खुशी और गमी उठाते हैं ।

सावित्री का राग गायत्री,
सैंन बैंन का जाला ।
शंख नाद की धूम मची है,
डमरू शोर कराला ॥

सावित्री अर्थात् प्रकाश यह भी माया है । इस से हम को सिद्धि शक्ति मिलती है और हमारे काम होते रहते हैं ।

शंख नाद डमरू श्रादि यह सब अन्तर के शब्द हैं। यह भी सब नाटक हैं श्रौर माया है। यह बनते और बिगड़ते रहते हैं।

रारंग सारंग वजी सारंगी,
बीन सितार सुहाला।
श्रुति धुन है उदगीत बानी,
श्रो३म श्रो३म का ताला॥

यह सब काल का खेल है श्रौर नाटक शाला है। इन में व्यक्ति को खुशी श्रौर मस्ती मिलती है श्रौर उसी में फँस कर रह जाता है। तभी तो सन्त कहते हैं कि ऋषि मुनियों के तप करते हुए जीवन गुजर गए किन्तु वह इस नाटकशाला में ही फँसे रहे और श्रागे न जा सके।

स्रोता गण सब सुनने श्राए,
मन में श्राए विहाला।
साधु दृष्टा साक्षी रूप हैं,
सुख दुख मन से टाला॥

जिस को यह ज्ञान हो गया कि मैं यह सब कुछ नहीं हूं और मैं इन सब से परे सुरत रूप हूं, खेल देखने के लिए आया हूं वह इनमें फंसता नहीं है और साक्षी बन कर रहता है। यदि तुम्हारा अभ्यास नहीं बनता तो इसके लिए रोना नहीं है। तुम अपनी प्रकृति के अनुसार ही दृष्य देख सकोगे।

यदि एक लड़का पढ़ता नहीं तो उसका कोई दोष नहीं है। उसकी प्रकृति ही ऐसी है। जैसे जैसे तत्व किसी के अन्तर हैं उनके अनुसार ही वह काम करेगा।

जिसने अपना रूप विसारा,
उर उपजा दुख शाला।
साक्षी देखें विमल तमाशा,
चित रहे सुखी सुखाला॥

जा इस ज्ञान को भूल जाता है कि यह सब प्रकृति का खेल है और मैं तो वास्तव में इनका साक्षी हूं तो फिर उसके साथ क्या होता है? जैसे

जैसे स्वप्न अथवा दृष्य उसको दृष्टिगोचर होंगे। उनके अनुसार वह दु:खी और सुखी होगा। यदि उसका अभ्यास बन गया तो सुखी अन्यथा दु:खी होता है। अब इन बानियों की समझ आती है। अच्छा हुआ कि मेरी आयु लम्बी हो गई और सार तत्व की समझ आ गई। हो सकता है कि अभी कुछ और अनुभव हो जाए। यदि तुम्हारे कर्म में धन है तो उसको कौन रोक सकता है। और यदि निर्धनता है तो उस को कोई बदल नहीं सकता। रोने धोने से कुछ नहीं बनता। कर्म का फल सब को भोगना पड़ता है। इसलिए जिस दशा में हो उस दशा में खुश रहने का प्रयत्न करो, क्योंकि यह जग तो नाटकशाला है। नाटक में लड़ाई झगड़ा भी होता है, विवाह शादी भी होती है। दु:ख सुख के दृष्य भी होते हैं और मृत्यु भी होती है।

तो फिर करना क्या है ? प्रत्येक समय अपने मन में अपने वास्तविक रूप का ध्यान रखो कि हम

मालिके कुल अथवा अकाल पुरुष के अंश हैं और यहां नाटक का खेल देखने आए हैं। जिस ने अपने रूप को पहचान लिया वह दुःख और सुख दोनो से बच जाता है।

भूल भरम में जो कोई आया,
सहै कर्म का भाला।
रैन का सुपना, जग की लीला,
सुपना धन और माला॥
आंख खुली तब कुछ नहीं दरसा,
गुप्त जो देखा भाला।
राधास्वामी संत रूप घर आये,
दीनबन्धु सुधि चाला॥
प्रेम प्याला हमैं पिलाया;
सहज किया मतवाला॥

हमारा भूल भरम क्या है? आज हमारे पास पैसा है और कल को चला गया तो हम रोते हैं। क्यों? क्योंकि हम को ज्ञान नहीं है। यह संसार

तो एक स्वप्न है। हम तो यहां तमाशा देखने के लिए आए हैं किन्तु इस को सत मान कर इस में फंस जाते हैं और दुःख सुख उठाते हैं।

आंख खुली का क्या अर्थ है ? ज्ञान हो गया और समझ आ गई। मेरी आंख क्या खुली ? कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता। ऐ सत्संगियो ! तुम लोग मेरे सच्चे सतगुरु हो। तुम्हारे अनुभवों के कारण मेरी आंख खुली। यदि गुरु पदवी पर न आता तो मैं सन्त मत को शिक्षा को कभी न समझ पाता। मुझे पूर्ण गुरु मिल गए। उन्होंने सत्संग कराया। अपनी शरण में लिया, ज्ञान प्रदान किया और उस मालिके कुल जो अकह, अपार, अगाध और अगम है उसका प्रेम दिया। किन्तु तुम लोग तो सारा जीवन बाबा फकीर, बाबा सावन सिंह जी महाराज अथवा राम और कृष्ण से ही प्रेम करते मर गए।

तुम्हारा प्रेम अपनी ज़ात से होना चाहिए। इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए किसो निर्बन्ध पुरुष के सत्संग में जाओ।

वधवें को बधवा मिले,
छूटे कौन उपाय ।
कर सत्संगत निर्बन्ध की,
जो पल में लेय छुडाय ।।

सब को राधा स्वामी !



सन्त कबीर की

पहेलियाँ

सत्संग हजूर परम सन्त परम दयाल पण्डित फकीरचन्द जी महाराज मानवता मन्दिर, होशियारपुर ।

२५ अक्तूबर, १९७३ ई० ।



जिया मत मार मुआ मत लैयो,
मास बिना मत ऐयो रे ।।
परले पार एक बेल का बिर्वा,
वाके पात नहीं हैं रे ।
होत पात चुग जात मृगवा,
मृग के सीस नहीं है रे ।

धंनुषवान ले चढ़ा है पारधी,
धनुवां में पर्च नहीं है रे।
सर सर वान तकातक मारे,
मिरगा के घाव नहीं है रे॥
उर बिन खुर विन चरन चोंच बिन,
उड़न पंख नहीं जाके रे।
जो कोई हंसा मार लियावे,
रक्त मांस नहि ताके रे।
कहें कबीर सुनो भाई साधो,
यह पद अति ही दुहीला हो।
जो इस पद का अर्थ लगावें,
वही गुरु हम चेला रे॥

राधा स्वामी !

आज दोवाली है, आप सब को दीवाली पर वधाई ! कल भी मैं ने यह शब्द सुना, आज इस शब्द को व्याख्या करता हूं। पहले अपने आप को

पूछता हूं कि इस शब्द की व्याख्या करने का तुम को क्या अधिकार है ? ऐसी बानियां लिखने वाले सन्त यदि आज होते तो उनसे पूछता कि आप ने यह पहेलियां लिख लिख कर संसार को चक्कर में डाल दिया और उन को अपने पीछे लगा लिया। जो व्यक्ति इन शब्दों को पढ़ेगा या सुनेगा, वह इस में से क्या समझेगा ? मैं ने इसको समझा है, किन्तु मुझे जो समझ आई है वह आप लोगों के कारण आई है। इसलिए मैं आप लोगों को अपना सच्चा सतगुरु मानता हूं। यदि मैं गुरु पदवी पर न आता और मुझे यह पता न लगता कि मेरा रूप लोगों के अन्तर प्रगट हो कर उनके काम करता है और मैं नहीं होता तो मुझे माया के रूप की समझ आ गई। इस लिए मैं इस शब्द के समझने के योग्य बना।

जिया मत मार, मुआ मत लैयो,
मास बिना मत आइयो रे ॥

कबीर साहब कहते हैं कि किसी जीवित चीज़ को मारना भी नहीं। यदि वह मर गया तो लेकर

नहीं आना, किन्तु मास अवश्य ले आना। मैंने जो समझा वह कहता हूं। हमारा मन कब मरता है? जब इसकी महासुन्न की समाधी लग जाती है तो मन पत्थर हो जाता है। इसकी जड़ समाधी हो जाती है और चेतनता नहीं रहती। मैं यह समझता हूं कि जब तक मन में संकल्प विकल्प आश और विश्वास है तब तक वह जीवित है। उस मे आश विश्वास हैं। उस को न मारो। उसको महासुन्न में ले जाओ। जब वह वहां मर जाए तो फिर उसको वापिस न लाओ। सोचो! हो सकता है कि मैं आप को समझा न सकूं किन्तु अपने आप को समझा रहा हूं।

यदि तुम्हारी निर्विकल्प समाधी लग गई तो तुम जड़ हो गए और जीवन का आनन्द जाता रहा। सन्तो ने भी कहा है कि महासुन्न में जाकर व्यक्ति मजजूब (मन के जजबे में बेसुध) हो जाता है और ये अवस्था अच्छी नहीं। सन्तों ने लिखा है कि यहां की आत्माए मरदूद (मृतक) वत् अथवा जड़ हो जाती हैं यानी जो व्यक्ति महासुन्न में प्राण त्यागता है उस

की आत्मा मरदूद (मृतक वत्) हो कर वहां रहती है। यदि तुम ने मन को मार दिया तो भी जीवन में आनन्द नहीं रहेगा, मैं इसका यह अर्थ समझता हूं। मैं हजूर दाता दयाल जी महाराज के दरबार में इन बातों को समझने और मालिक को मिलने गया, धन, वैभव के लिए नहीं गया था। उन्होंने मुझे मालिक के स्थान पर यह राधा स्वामी मत दिया। जब मुझे यह मालूम हुआ कि लोगों के अन्तर मेरा रूप प्रगट होता है और उनके काम करता है किन्तु न मैं होता हूं और न ही मुझे कोई पता होता है। तो मुझे विश्वास हो गया मेरे अन्तर भी जितने रूप रंग, भाव विचार उत्पन्न होते हैं, यह हैं नहीं, यह केवल Impersuition and Suggestions हैं अथवा प्रारब्ध कर्म और इस जन्म के संस्कार हैं।

अत: मेरा जो मन है मैं ने उसको मारा भी नहीं है, वह जीवित भो है, पर उसके जो खेल होते हैं उस का मुझ पर काई प्रभाव नहीं होता, तथा मैं उनमें फंसता नहीं। जब मुझे यह दृढ़

विश्वास हो गया कि यह फुर्नाएं सब प्रतिबिम्ब हैं तो मैं इनको मारूंगा क्यों ? अतः मैं ने जीवित को मारा नहीं और न निर्विकल्प समाधी में ही रहता हूं। आज तक किसी सन्त ने ऐसा साफ नहीं कहा। कहा तो सब ने ही पर सैंन वैंन में। मेरी तरह से किसी ने समझाया नहीं। क्यों ? एक तो जीव अधिकारी नहीं हैं, जीवों को इस पद की आवश्यकता नहीं है। अब यह डाक्टर सज्जन उत्तर प्रदेश से आए हैं, कितना रुपया इनका आने जाने में व्यय होगा ? कहता है कि मेरे लड़कों के बाल काट दीजिए अर्थात् मुण्डन संस्कार कर दीजिए। अब आप सोचो कि कहां सन्त मत और कहां ये बाल कटवाना। यह संस्कार है। हम माया में ग्रसित हैं परन्तु माया के बिना माया देश में निर्वाह भी नहीं है। यदि मन या मन के विचार या माया की वस्तुओं में हमारी सशक्ति नहीं है तो यहं जीवन मुक्त अथवा सहज समाधि की अवस्था है। मैं हजूर दाता दयाल जी महाराज के रूप में फंसा हुआ था, कोई स्त्री के के रूप में, कोई धन और मान के रूप में तथा कोई

ईश्वर और कोई गुरू के रूप में फंसा हुआ है। यह सब बन्धन हैं परन्तु हम इनको सत मानते हैं। मुझे इस बात की अब समझ आ गई है कि मेरे अन्तर जो हज़ूर दाता दयाल जी महाराज का रूप प्रगट होता था, वह क्या था? वह मेरा मन जीवित होता था।

कबीर साहब कहते हैं कि जीवित को मत मारो अर्थात् मन को मारो मत, वह निर्विकल्प समाधि में स्वयं ही मर जाएगा। इस को मारना मत, पर मांस ले आना। मांस क्यों खाया जाता है? मन की शांति के लिए। मांस ले आने का प्रयोजन है शान्ति प्राप्त करना। जब हम को यह ज्ञान और अनुभव हो जाता है कि यह सब माया है और मैं इसका साक्षी हूं, तो इस अवस्था का नाम है सहज समाधी। इस अवस्था में आदमी न भयभीत होता है न घबराता है, न क्रोध करता है और न अधिक हंसता ही है।

हज़ूर दाता दयाल जी महाराज अमेरिका से

लौटे, मुझे लिखा कि मैं सूर्य नारायण मेहर के घर पर देहली ठहरूंगा। मैं वहां गया तो पता लगा कि वह तो पुरा कांनू गोम्रां (जिला बनारस) में हैं। प्रेम का भाव था, ठेस लगी और मैंने दीवार में ज़ोर से अपना सिर मारा, बेहोश हो गया। सूरज नारायण मेहर ने पट्टी बांधी, जब मुझे होश आया तो सूरज-नारायण मेहर ने कहा कि आप पुरा कानूं गोआं चले जाओ। परन्तु एक तो मेरे पास रुपए नहीं थे और दूसरे छुट्टी नहीं थी, खैर रुपए तो मैंने मंगवा लिए पर छुट्टी न होने के कारण मैं उनके पास न जा सका। अन्त में गौरीशंकर के घर पर उनके पास गया तो उन्होंने कहा कि देखो भाई! तुम को एक कहानी सुनाता हूं। परन्तु शरत यह है कि तुम हंसोगे नहीं। मैंने नम्र भाव से कहा कि महाराज! मैं नहीं हंसूंगा। उन्होंने कहानी प्रारम्भ की तो मैं अपनी हंसी रोक न सका और बहुत हंसा। कहने लगे कि फकीर तुम असफल हो गए। तुम्हारा अपने मन पर नियन्त्रण नहीं है।

मैं बसरा बगदाद से वापिस आया, अपने अन्तर

प्रकाश देखता था, बीन भी बहुत सुनी थी, शब्द सुनता था, मुझे बहुत गर्व था कि मैंने मंदान मार लिया। मैं अपने गुरु महाराज के दरबार में लाहौर गया, उन्होंने कहा कि फकीर! बाहर धूप में चलो, देखूं तो सही कि तुम ने क्या कमाई की है। जब उन्होंने मुझे धूप में खड़े कर के देखा तो कहा अभी योगी बने हो, अभी सन्त नहीं बने। यह सुन कर मैं उदास हो गया। फिर कहने लगे कि अच्छा कल को तुम्हारी परीक्षा होगी। मैंने सोचा कि मुझ से प्रश्न करेंगे कि तुम ने अन्तर की सोपानों में क्या देखा? तो मैं बता दूंगा।

मैं जब उनके दरबार में जाया करता था, तो वहां बहुत सेवा किया करता था। प्रातः मैं भोजनालय में गया तथा सब्ज़ी काट कर रखी, जब तक आप वहां पधारे और कहा कि फकीर सब्ज़ी मैं बनाऊंगा। पतीले में घी डाल कर चूल्हे पर रख दिया, तथा मुझे कहा कि नमक लाओ, मिर्च लाओ, हल्दी लाओ, जीरा लाओ, चमच लाओ, आदि आदि कहते चले

गए। मैं एक वस्तु को लेने जाऊं ग्रो अन्य आज्ञा मिल जाए, मैं एक भी वस्तु न दे सका घी जल गया। उन्होंने पतीला उठा कर नीचे रख दिया और मुझे सब्जी बनाने को कह कर चलें गए। संध्या समय मैं ने विनीत भाव से कहा कि हजूर मेरी परीक्षा नहीं ली। तो कहा कि तेरी परीक्षा हो गई और तुम ग्रसफल हो गए। मैंने चकित होकर पूछा कि महाराज ! कब ? तो कहा कि प्रात:काल सब्ज़ी बनाने लगे थे। तब मैंने कहा कि महाराज ! ग्रापने इतनी जल्दी जल्दी चीज़ें मांगी कि मैं घबरा गया तो हंस कर कहने लगे कि (न घबराना ही फकीरी है।)

हमारा मन कब बस में आता है ? जब से मुझे यह ज्ञान हुग्रा कि मैं किसी के ग्रन्तर नहीं जाता। तो वह कौन जाता है ? तुम्हारी ग्रपनी ही भावना। तो कबीर साहब कहते हैं कि मन को और इसके आवेश को बस में करना है। न ग्रधिक खुशी ग्राए ग्रौर न ग्रधिक चिन्ता ग्राए और न ही अधिक ग्रावेश में आए।

जिया मत मार मुआ मत लैयो,
मास बिना मत ऐयो रे ॥
परले पार एक वेल का विर्वा,
वाके पात नहीं हैं रे ।

जब यह अवस्था आ जाती है तो फिर इस अवस्था में से अर्थात् सहज अवस्था से आशाएं व वासनाएं निकलती रहती हैं अर्थात् पत्ते निकलते रहते हैं। वह वासनाएं फिर मन में आ जाती हैं।

होत पात चुग जात मृगवा,
मृग के सीस नहीं है रे ।
धनुषवान ले चढ़ा है पारधी,
धनुवां के पर्च नहीं है रे ।

मन रूपी हिरण पत्तों को खा जाता है । अर्थात् वह वासनाएं मन में आ जाती हैं किन्तु मन का सिर नहीं हैं । मैं अपने विषय में जानता हूं कि मैं सहज अवस्था में रहता हूं । जब कोई ऐसी वैसी बात हो जाती है तो मेरे अन्तर भी जज़बा पैदा हो जाता है और

उसका प्रभाव मन में आता हैं । उन विचारों को हम जिस साधन से रोकते हैं वह क्या है ? ज्ञान, समझ और विवेक । ज्ञान रूपी वान से उन को रोका जा सकता है ।

सर सर वान तकातक मारे,
मिरगा के घाव नहीं है रे ॥

लोग मन को बस में करने का बहुत यत्न करते हैं किन्तु यह बहुत कठिन काम है । मन को बस में करने के लिए किसी पूर्ण पुरूष की संगत करो और उस से ज्ञान प्राप्त करके उस पर आचरण करो । तब मन बस में आयेगा । अन्यथा तुम लाख प्रकाश देखते रहो, इससे तुम में सिद्धि शक्ति तो आ जाएगी किन्तु मन बस में नहीं आएगा और तुम दु:ख और सुख से नहीं बच सकोगे । यह मेरा अनुभव है । इसलिए पूरे गुरु की आवश्यकता है । मुझे यह समझ शीघ्र नहीं आती थी क्योंकि दाता दयाल जी महाराज सैंन वैंन में समझाते थे । और सैंन वैंन को मैं समझ नहीं सकता था । इसलिए सैंन वैंन को छोड़ दिया । जैसा कोई आप होता है

वह दूसरों को भी वैसा ही समझता है। हज़ूर महाराज राय सालिगराम साहब को खोज थी और परमार्थ में रुचि थी। उन्होंने समझा कि दूसरों को भी ऐसा ही होगा, इसलिए उन्होंने राधा स्वामी मत चला दिया।

मैंने जो समझा वह कहता हूं। इस मन को विचार से और ज्ञान से बस में करो, किन्तु यह विचार शीघ्र नहीं आता है क्योंकि मन निश्चल नहीं है और आशाओं में फंसा हुआ है। सुमिरन, ध्यान हमारा लक्ष्य नहीं है। यह तो मन को बस में करने और स्थिर करने का साधन है। हमारा वास्तविक ध्येय अनुभव और शान्ति है। भजन भी मन को स्थिर करने के लिए है। यदि कोई लड़का स्कूल में अपने मन को स्थिर करके अध्यापक की बात को सुनता है तो उस को घर पर अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं रहती।

सेना (Milatary) में एक शब्द है (Attention) अर्थात् सावधान। सेना में यह नियम है कि जब कोई

अधिकारी के पास जाएगा अथवा कोई अधिकारी अपने से Senior (बड़े) अधिकारी के पास जाएगा तो वह Attention (सावधान) होकर खड़ा होगा तथा पूरे ध्यान से उसके शब्द को सुनेगा। यदि ध्यान से नहीं सुनेगा तो कुछ सुनेगा और कुछ न सुनेगा। ऐसे ही सत्संग भी पूरे सावधान होकर सुनना चाहिए। जो लोग पूरे ध्यान से सत्संग नहीं सुनते उनको पूरा लाभ नहीं होता। स्वामी जी की बाणी है कि :—

सब हो आये सतगुरू आवे,
वचन न पकड़ा दरश न लागे।
कहो उस सत्संग से क्या फल पाया,
वक्त गया और जनम गँवाया।

अतः सेवा की यह रीति है कि वह बलिदान मांगती है। तुम लोग सिनेमा देखने जाते हो, क्योंकि धन और समय का व्यय होता है इसलिए ध्यान से देखते हो और सुनते हो। जो सेवा नहीं करता और बलिदान नहीं करता उसको कुछ नहीं मिलता। जो अपनी जीविका के विचार से आते हैं उनको भी क्या

मिलेगा ? मैं अपनी ओर से समझाने का पूरा प्रयास करता हूं, परन्तु लाभ तो उस को ही होगा जो पूरे ध्यान से सुनेगा और पूरे ध्यान से वह सुनेगा जिस का मन स्थिर होगा।

तन थिर, मन थिर, वचन थिर,
सुरत निरत थिर होय।
कहैं कबीर वा पलक को,
कल्प न पावै कोय ॥

सन्तों को ऊंची शिक्षा को कोई समझ नहीं सकता अत: सन्तों ने जीवों को सुमिरन ध्यान और भजन दिया, जिस से मन स्थिर हो जाए। सत्संग की बहुत बड़ी महिमा हैं किन्तु बलिदान के बिना किसी को कुछ नहीं मिलता। पैसे का बलिदान ही केवल आवश्यक नहीं है। तन का बलिदान, मन का बलिदान तथा समय का बलिदान कर सकते हो। मैंने एक मन्दिर निवासी को एक बीमार के साथ देहली भेजा, क्योंकि उस को वहां चिकित्सा करानी थी। उस सज्जन ने आज्ञा तो मानी और साढ़े चार महीने

वहां उनके साथ भी रहा, किन्तु मन में यह विचार था कि मैं ने साढ़े चार महीने कैद काटी है।

तुम्हारे बलिदान ने तुम को तारना है। गुरु ने तो तुम को तुम्हारी प्रकृति के अनुसार मार्ग बताना है। हज़ूर दाता दयाल जी महाराज ने श्री कुबेरनाथ जी से कहा था कि जिस काम में उलझन और अड़चन पड़े तुम वहां सफल हो जाया करोगे। स्वामी गोविन्द कौल जी कश्मीर निवासी ने जब हज़ूर दाता दयाल जी से नाम दान के लिए प्रार्थना की, तो कहा कि एक शर्त पर तुम को नाम दान मिल सकता है और वह यह है कि तुम सारा जीवन मुझ से परमार्थ का प्रश्न नहीं करोगे। ऐसा क्यों कहा? स्वामी गोविन्द कौल जी के अन्तर अनेक प्रश्न उत्पन्न होते थे परन्तु उनको आज्ञा दी कि तुम प्रश्न नहीं करोगे, अतः उनके अन्तर संयम बढ़ता था। उनके लिए यही साधन था। प्रश्न न करना तथा अपने भाव को रोकना देखो! मन को रोकने की कैसी अनोखी विधि बताई। कितना गूढ़ रहस्य है।

हजूर महाराज जी, स्वामी जी महाराज के कितने बड़े प्रेमी थे, दर्शन के बिना भोजन नहीं करते थे। स्वामी जी महाराज ने उनको आज्ञा दी कि तुम मेरे पास बिल्कुल नहीं आओगे। बारह वर्ष उनको अपने पास नहीं आने दिया। क्यों? ताकि उनके अन्तर जो स्वामी जी के दर्शन करने या उन से मिलने का भाव प्रबल हो गया था उसको वश में लाया जा सके। हजूर महाराज जी ने आदेश का पालन किया तथा आगरा से बाहर चले गए। किन्तु फिर भी कभी माता जी को और कभी किसी सत्संगी को लिखा करते थे कि मेरा मन दर्शन करने को बहुत चाहता है। मैं तुम को मन के बस करने के बारे में बता रहा हूँ। गुरु अच्छी तरह जानता है कि जीव का भला किस बात में है और कैसे इसका मन बस में आ सकता है। जब व्यक्ति ऊपर की अवस्था में चला जाता है तो उसके अन्तर जो वासनाएं या प्रश्न पैदा होते हैं उनको मन बस में कर लेता है अर्थात् वह मन में आ जाते हैं। परन्तु मन का सिर नहीं है, उन विचारों व भावों को निरख परख किया करो अर्थात् उन विचारों पर देखा

करो। मन के भावों को रोकना कोई सरल काम नहीं है।

उर बिन खुर विन चरन चोंच बिन,
उड़न पंख नहि जाके रे।
जो कोई हंसा मारि लियावे,
रक्त मांस नहिं ताके रे।

वह कहते हैं कि उसके मारने से उस में से रक्त नहीं निकलता। यह एक पहेली है, कौन समझेगा इसको ? सन्तों ने ऐसी बानियां लिख कर संसार को आश्चर्य में डाल दिया है, ताकि उनसे लोग प्रश्न करें। लोग गंगा में स्नान करके सूर्य की ओर मुँह करके सूर्य को जल दे रहे थे, तो गुरु नानक देव जी ने दूसरी ओर मुँह करके जल देना प्रारम्भ कर दिया। लोगों ने पूछा कि महाराज ! आप क्या कर रहे हैं ? तो कहने लगे कि अमुक स्थान पर आग लगी हुई है, उस पर जल छोड़ कर बुझा रहा हूं। लोगों ने कहा कि यह जल वहां कैसे पहुंचेगा ? उन्होंने कहा कि तुम्हारा जल सूर्य तक कैसे पहुंचेगा ? यह चेताने की

एक विधि है। मैंने हज़ूर महाराज के बारे में आपको बताया, किन्तु आजकल के शिष्य तो गुरुओं से मान और प्रतिष्ठा चाहते हैं। चूंकि गुरु लोग उनका धन खाते हैं अतः गुरु उनके दोषों को ध्यान में नहीं लाते और उल्टी उन की प्रशंसा करते हैं।

एक बार स्वामी जी महाराज ने आज्ञा दी कि मेरे पास कोई नहीं आएगा। हज़ूर महाराज जी को दर्शनों की इच्छा हुई तो वह मकान के पिछली ओर सीढ़ी लगा कर रोशनदान से झांकने लगे। स्वामी जी महाराज की दृष्टि पड़ गई और उन्होंने हज़ूर महाराज जी को अपने पास बुला कर खड़ाओं से पपीटा। आज कल कौन सा शिष्य है जो गुरु से मार खाता है।

मेरा मन बहुत चंचल था, किन्तु अब ज्ञान से कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता, जो विचार मेरे अन्तर उठते हैं मैं उनकी परवाह नहीं करता। मैं लाहौर में हज़ूर दाता दयाल जी महाराज के सत्संग में बैठा था. मन में नाना प्रकार के मलिन विचार उत्पन्न

हो रहे थे। उन्होंने कहा कि लोग सत्संग में आते हैं, अपने मन को मलिन करते हैं तथा वातावर्ण को भी खराब करते हैं। यह सुन कर मैं ने अपने मन से उन मलिन विचारों को निकालने का प्रयास किया, किन्तु रोक न सका। पुनः उन्होने कहा कि फकीर ! मैं तुम को कह रहा हूं। परन्तु मेरा मन फिर भी ठीक न हुआ। फिर उन्होंने बन्सधारी को कहा कि फकीर को पकड़ कर बाहर ले जाओ और इसके सिर पर सौ जूते लगाओ। उसने आज्ञा का पालन करने के लिए मेरी बांह पकड़ी। इतने में श्री विष्णु दिगम्बर जो कि उनके दरबार में जा कर गाया करते थे उठे, और विनीत भाव से प्रार्थना की कि हज़ूर फकीर को क्षमा कर दीजिए। तब मेरा छुटकारा हुआ।

सत्संग के पश्चात् मैं उनके चरणों पर मस्तक रख कर बहुत रोया। आप ने मुझे धैर्य बन्धाया और कहा कि फकीर ! चिन्ता मत करो, मन में मलिनता आ ही जाती है, ठीक हो जाओगे। सोचो ! जो फकीर इतना प्रेमी था, उसके मन की क्या दशा थी ? तो

कबीर साहब कहते हैं कि मन को मारो। मैंने बहुत अभ्यास किया है परन्तु क्या बीन सुनने से या शब्द सुनने अथवा प्रकाश देखने के पश्चात् मुझे क्रोध नहीं आया ? क्या मैं अपने घर में कामी नहीं हुआ ? खेद है कि यह महात्मा लोग संसार को अपनी रहनो बतायें कि उनके मन के साथ क्या बीती ? यह कोई सरल काम नहीं है, हम बगुले भगत बन कर सत्संग कराते हैं, मैं समस्त आयु अपने मन के साथ जूझता रहा, किन्तु फिर भी गिरता रहा, अब भी किसी समय गिर जाता हूं। क्योंकि मुझे मन के रूप की समझ आ गई है, इसलिए मैं उसमें फंसता नहीं, और सम्भल जाता हूं। तभी तो मैं कहता हूँ कि इन गुरुओं ने मानव जाति को धोका दिया है। किसी ने सत्यता वर्णन नहीं की है, परन्तु हम इस में खुशी लेते हैं।

यह मन मरता नहीं है। इसके रूप को समझना है। जिस ने इसके रूप को समझ लिया, कि यह सब माया है, फिर वह न अधिक प्रसन्न होता है और न अधिक दु:खी ही होता है तथा अपने आप को शान्त

अवस्था में रखता है। हजूर दाता दयाल जी महाराज ने कहा था कि शिक्षा को बदल जाना। पता नहीं जो कुछ मैं ने कहा है वह ठीक है अथवा गलत है, किन्तु मेरी नीयत साफ है।

आज दीवाली है। दीवाली में प्रकाश होता है। बाहर में दिन को सूर्य का प्रकाश होता है तथा रात को चन्द्रमा का प्रकाश होता है। एक मनुष्य के अन्तर प्रकाश होता है और वह है अनुभव रूपी तथा ज्ञान रूपी प्रकाश। सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्रों का प्रकाश तो प्रत्येक समय नहीं रहता, परन्तु अनुभव तथा ज्ञान रूपी प्रकाश सदा तुम्हारी सहायता करता है।

कहे कबीर सुनो भाई साधो,
यह पद अति ही दुहेला रे।
जो या पद का अर्थ लगावै,
वही गुरु हम चेला रे॥

असली वस्तु है ज्ञान, जो रंग, रूप, भाव, विचार तथा चित्र अन्दर उत्पन्न होते हैं, यह सब प्रतिबिम्ब हैं। जो इस ज्ञान को प्राप्त कर लेता है वह इस संसार

में सम अवस्था या जीवन मुक्त अवस्था में रहता है। न अधिक रोता है और न अधिक हर्ष करता है। हम लोग गृहस्थी हैं। गृहस्थ के जीवन में सम अवस्था में रहना हर एक व्यक्ति का काम नहीं है। मैं अफसर भी रहा हूं और नीचे के पद पर भी काम किया है। यहां यह लोग गल्तियों भी करते हैं, समय के अनुसार ठीक प्रबन्ध रखने के लिए इन लोगों को किसी समय कुछ कहना भी पड़ता है। मैं ज्ञान में रहता हुआ सब कुछ करता हूं परन्तु प्रत्येक व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता, इसके लिए पर्याप्त सत्संग और अभ्यास की आवश्यकता है, यदि पूरा सतगुरु नही मिला तो यह अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती।

हजूर दाता दयाल जो महाराज ने अपनी (अद्भुत् उपासना योग) नामी पुस्तक में लिखा है कि अभ्यास करते करते जब अन्तर में बीन बजने लगे तो फिर किसी पूरन गुरु की खोज करो। अत: मैं किसी को नाम नहीं देता। कई लोग नाम देते हैं, कृषक जी, महात्मा दयाल दास, कमालपुर वाली माई, यह सब

नाम देते हैं परन्तु मैं किसी को नाम नहीं देता, क्यों ? मेरा वचन ही नाम है । मेरा काम P.H.D. का पद प्राप्त करने वालों को पढ़ाना है। जब तुम्हारा मन स्थिर हो जाएगा तब तुम को गुरु की बात समझ में आएगी । यदि बुद्धि से तुम समझ भी गए तो जब तुम उसको व्योहार में लाओगे तो गिर जाओगे । क्यों ? मन की वासनाएं हैं। बड़े बड़े ऋषि गिर गए। मैंने जो समझा वह कहता हूं। दावा कोई नहीं है।

सतगुरु जीव के भाव को या तो उभारता है कि वह भोग ले, और या उसको ऐसी विधि बताता है कि वह भाव उसको न सताए। हम बसरा बगदाद में थे, किसी के मन में कोई बात आती थी तो हम हज़ूर दाता दयाल जी महाराज को लिखते कि महाराज ! हम ऐसा कर लें या नहीं। तो वे लिख देते कि अवश्य करो। किसी काम के लिए भी इन्कार नहीं करते थे। अब समझ आई कि उनका तात्पर्य यह था कि भाव को निकल जाने दो। मैं ने जीवन में जो कुछ किया यह मेरा भाव ही तो था।

मेरे भाव को निकालने के लिए उन्होंने मुझे यह काम दिया था। जिस के अन्तर जिस प्रकार का भाव होता है वह उस ओर जाने के लिए विवश है। महात्मा गान्धी के अन्दर हिन्दू मुस्लिम एकता का भाव था तो सन् १९४२ में उन्होंने सब को एक प्याले में पानी पिलाया, परन्तु सन् १९४७ में क्या हुआ ? वही हिन्दू मुस्लिम एक प्याले में पानी पीने वाले आपस में कट के मर गए। अग: भाव निकालो पर किसी पूरन पुरुष की आज्ञा के आधीन। पूरन गुरु की आज्ञा में ही भलाई है। अतः मेरे मार्ग में जो कुछ है वह गुरु है।

हजूर दाता दयाल जी महाराज ने मुझे जो आज्ञा दी, मैंने उसका पालन किया है। मैंने जो समझा वह कहा। मैंने यह कभी नहीं सोचा कि इस का परिणाम क्या होगा ?

सब को राधा स्वामी !

सन्त कबीर की

पहेलियाँ

सत्संग हजूर परम सन्त परम दयाल पण्डित फकीरचन्द् जी महाराज मानवता मन्दिर, होशियारपुर ।

एक नवम्बर, १६७३ ई० ।



लखै रे कोई बिरला पद निरवान ॥
तीन लोक में यह जम राजा,
चौथे लोक में नाम निसान ।
याहि लखत इन्द्रादिक थक गए,
व्रह्मा थक गए पढ़त पुरान ॥

गोरख दत्त, वशिष्ठ, व्यासमुनि,
सम्भू थक गए धर धर ध्यान ।
कहैं कबीर लखे कोई विरला,
सतगुरू लग गए जिनके कान ॥

राधा स्वामी !

इन शब्दों ने जीवन में मुझे उन्मत किया हुआ था । कौन व्यक्ति अपने पूर्वजों के विरुद्ध कोई बात सुन सकता है ? सिक्खों के सामने यदि गुरु नानक साहब के बारे कुछ कहोगे तो झगड़ा हो जाएगा । ऐसे ही हिन्दुओं के बारे समझो । मेरे प्रारब्ध कर्म अथवा मौज मुझे हजूर दाता दयाल जी महाराज के चरण कमलों में ले गई. मैं स्वयं तो सन्त मत में आया नहीं था, प्रकृति ले आयो । मैं हजूर दाता दयाल जी महाराज को राम का अवतार समझता था । उन्होंने मुझे सन्त मत का विचार दिया, चूँकि बाणी की मुझे समझ नहीं आती थी तथा हजूर दाता दयाल जो महाराज को मैं छोड़ नहीं सकता था, अतः मैंने प्रण किया

था कि इस मार्ग पर सच्चा हो कर चलूँगा। जो मेरा अनुभव होगा वह संसार को बता जाऊँगा। इस लिए मैं जो यह काम करता हूं यह मेरा अपना ही कर्म है और मैं इसको भोग रहा हूं। किसी पर मेरा कोई उपकार नहीं है।

मैं सोचता हूं कि फकीर! तुम अपने आपको समय का सन्त सतगुरु कहते हो तथा फकीरों के और सन्तों के अनुयाई बने हुए हो। क्या तुमने निर्वाण को प्राप्त किया है? पता नहीं जो निर्वाण पद मैंने समझा है। कबीर साहब का भी पद निर्वाण वही है अथवा कोई और है। यदि इन वर्तमान महात्माओं से पूछता हूं तो यह भी कोई उत्तर नहीं देते। हो सकता है जो मैंने समझा है यह गलत हो अतः मैं शरणागत होता रहता हूं। कम से कम हिन्दू धर्म या सनातन धर्म की शरणागत विधि को तो न छोड़ूं।

लखै रे कोई विरला पदा निरवान ॥
तीन लोक में यह जम राजा,
चौथे लोक में नाम निशान ॥

तीन लोक में यम राज के होने का तो मुझे विश्वास हो गया। यम का अर्थ है बाहर निकालना। हमारे अन्तर से जो रूप, रंग, भाव तथा विचार आदि निकलते हैं यह सब यमराज हैं। जब से मुझे यह पता चला कि मेरा रूप तुम लोगों के अन्तर प्रगट होकर तुम्हारी सहायता करता है परन्तु मैं नहीं होता तो इस बात ने मुझे विश्वास करा दिया कि जो व्यक्ति मुझे प्रकाश में अपने अन्तर देखता है और मैं नहीं होता तो फिर वह कौन है ? यमराज।

जब मैं यह कहता हूं कि मैं समय का सन्त सतगुरु हूं तो मैं ठीक कहता हूं। इसी दृष्टि से कि जो लोग मेरा ध्यान करते हैं उनको मैं इस आयु में अपना सतगुरु मानता हूं। क्योंकि इन लोगों के कारण ही मुझे इस भेद का पता लगा है। अब मैं इन रूप, रंगों को छोड़ कर आगे प्रकाश और शब्द में जाता हूं। शब्द को सुनना तथा प्रकाश को देखना ही नाम है।

रूप तीन प्रकार से दृष्टिगोचर होते हैं। एक

तो तुम सामने बैठे हुए दिखाई पड़ रहे हो। एक स्वप्न में रूप दृष्टिगोचर होते हैं तथा एक साधन अभ्यास में रूप दिखाई पड़ते हैं। मैं उस वस्तु की खोज करता रहता हूं जो शब्द में रहती हुई शब्द को सुनती है तथा प्रकाश में रहती हुई प्रकाश को देखती है, परन्तु उसका पता नहीं लगता। कभी कभी एक दो महीने के पश्चात् ऐसी अवस्था आ जाती है कि मैं गुम हो जाता हूं। काश! आज यदि कबीर साहब अथवा दूसरे बानियां लिखने वाले सन्त होते तो मैं उनसे पूछता कि अपनी रहनी बताओ। पुस्तकों में तो जो मन में आया वह लिख दिया। एक व्यक्ति कहता है कि मुझे मेरे अन्तर में रामचन्द्र जी मिले हैं। मिले या न मिले यह तो दूसरी बात है, परन्तु संसार तो मान करेगा कि इसके अन्तर में रामचन्द्र जी के दर्शन हुए हैं। आयु व्यतीत हो गई तथा अब भी साधन करता हूं। यह समझ आई कि वह वस्तु जो शब्द को सुनती है तथा प्रकाश को देखती है, जब वह इनको छोड़ जाती है तो उसके पश्चात् जो कुछ शेष रह जाता है वह निर्वाण है। शेष क्या रह जाता है?

वहां न राम, न रहीम, न गुरु, न चेला, न भक्ति, न ज्ञान, न शब्द, न प्रकाश तथा न मैं न तू। उस अवस्था का नाम निर्वाण है। अभी तक मैं वहां ठहर नहीं सकता। इस बात का दृढ़ विश्वास हो जाना कि मैं कौन हूं, यह निर्वाण है। मैं कौन हूं ? जो वस्तु शब्द को सुनती है तथा प्रकाश को देखती है वह मैं हूं। अब विचार करें कि यदि मैं वहां पहुंच गया तो क्या मैं कुछ बन गया ? नहीं। यह समझ आई कि वह एक परम तत्व है, उसमें स्वाभाविक गति होती है, तो शब्द प्रकाश उत्पन्न हो जाते हैं। जीवन बन जाता है। अपना खेल खेलने के पश्चात् टूट जाता है, तथा उसी में समा जाता है। जब यह अवस्था आ जाती है तो फिर जप, तप, तीरथ, व्रत, ज्ञान, ध्यान सब भूल और भरम हो जाते हैं।

याहि लखत इन्द्रादिक थक गये,
ब्रह्मा थक गये पढ़त पुरान ॥

जिन्होंने तपस्या की, जब तक वह तपस्या में हैं तब तक वह निर्वाण में नहीं हैं। जब तक कोई किसी

पोथी ग्रन्थ, वेद या किसी वाणी के पाठ में है वह निर्वाण में नहीं है। तभी तो मैं कहता हूं कि मुझे आज तक कोई ऐसा सन्त नहीं मिला जिस ने अपने जीवन का निज अनुभव बताया हो। क्या किसी सन्त ने आज तक यह कहा कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता ? नहीं।

कल ठाकुर फकीरचन्द की चिट्ठी आई, वह बाबा सावनसिंह जी महाराज का शिष्य है। चूंकि विचार मिला हुआ है कि गुरु जीवों के पाप काट देता है, तथा सहायता करता है, वह लिखता है कि मुझे लड़ाई के मैदान में गोली लगी, बड़ी कठिनाई से बचा, अत्यन्त कष्ट उठाया, परन्तु मुझे तो हजूर बाबा सावनसिंह को ओर से कोई सहायता नहीं मिली। कैसे मानूं कि सन्त किसी की सहायता करते हैं ? लड़ाई से वापिस आया तो यह समझा कि मुझ में कोई कमी है। हम लोग बहुत से सत्संगी मिल कर डेरे में शब्द पढ़ा करते थे, गुरु महाराज से प्रार्थना करते थे कि हमारे अपराध क्षमा कर दो। हजूर बाबा सावनसिंह जी महाराज बाहर आए, और कहा

कि सुना ! न मैं और न कोई और गुरु या महात्मा किसी के कर्म काट सकता हैं। जिस ने अपराध किया है वह अपराधी है तथा अपराधी को अपने अपराधों का दन्ड भुगतना पड़ेगा। अतः ऐसे शब्द पढ़ना बन्द कर दो। जब हजूर बाबा जगतसिंह जी महाराज चोला छोड़ गए तो फिर मैं बाबा चरनसिंह जी महाराज के पास गया, तथा उनसे विनीत प्रार्थना की। उन्होंने कहा कि जो कुछ हजूर बाबा सावन-सिंह जी महाराज कह गए हैं उस पर चलो।

उसने और भी बहुत कुछ लिखा है। अन्त में लिखता है कि बाबा जी ! परदेसी जी के कारण मैं आपकी शरण में आया था, आप का सत्संग सुना और मेरे सब भरम चले गए, और मैं बात को समझ गया। आप का भला हो।

गोरख दन्त, वशिष्ठ व्यास मुनि,
सम्भू थक गए धर धर ध्यान ॥

जब यह बानियां सुनता था, तो मुझे दुःख होता था। चूंकि हजूर दाता दयाल जी महाराज पर मेरा पूर्ण विश्वास था, अतः मैं न तो उनको छोड़ सकता

था और न उनकी दी हुई वानी को गलत कह सकता था और न बानी ही मुझे भेद देती थी। अतः हज़ूर दाता दयाल जी महाराज ने मुझे भेद समझाने के लिये गुरु पदवी दी और यह काम करने का आदेश दिया था। मैं न गुरु हूं, न महात्मा हूं, तथा न कुछ बनता ही हूं। अब बात समझ में आ गई, तथा भरम दूर हो गये। जब तक शरीर है यह गति करने के लिए विवश है. इसलिए जो समय मिलता है ऊपर जाने का प्रयास करता हूं। गिरता हूं, फिर चढ़ता हूं अतः अनुभव के अनुसार कहता हूं कि यदि सन्त मत में मुझे सचाई सिद्ध न होती तो मैं इसके विरुद्ध आवाज़ दे जाता। अब भी जहां शिक्षा ठीक नहीं दी जाती वहां मैं उसका खण्डन कर जाता हूं।

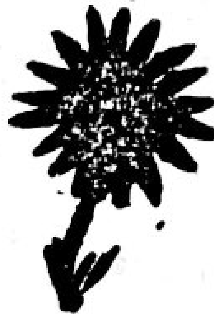
कहै कबीर लखै कोई विरला,
सतगुरु लग गए जिनके कान ॥

क्या सतगुरु ने तुम्हारे कान में चले जाना है? नहीं। सतगुरु का ज्ञान तुम्हारे कानों में जायेगा। यदि उस पर आरूढ़ होकर साधन कर लोगे, तो इस चक्र से निकल जाओगे। आप सज्जनों के अनुभव से

मेरी ग्रांख खुली, अतः ग्राप लोगों का ग्राभारी हूं।

ग्रब यह सज्जन आया है, इस ने आज तक दुनिया के कामों के ग्रतिरिक्त ग्रौर क्या किया है ? कभी कारोबार नहीं चलता, कभी लड़के से नहीं बनती, कभी कोई कष्ट और कभी कोई। तुम लोगों को तो दुनिया चाहिए। इसके लिए है तुम्हारा मन। यदि तुम्हारा मनोबल दृढ़ है तो उन्नति करोगे, अन्यथा असफल हो जाओगे। बात सच्ची कहता हूं। मेरा मार्ग तो और है, परन्तु तुम लोग मुझे अपने झमेलों में फंसाते हो। मुझे इन बानियों ने चकित कर रखा था, अतः देखना चाहता था कि सत्संग क्या है। अब समझ ग्रा गई अतः अब मैं विश्व धर्म सम्मलन जो कि ग्रगले वर्ष में होगा, मैं वहां बोलना चाहता हूं कि विश्व के धर्म क्यों बने ? और किस ने बनाए ? इसका क्या कारण है ?

सब को राधा स्वामी !



शब्द

राजों के महाराज, तुम मेरे सतगुरु स्वामी ।

हित अनहित सब के हितकारी, प्रगटे जन के काज ।

मरमारथ के कारण आये, साज के सन्त समाज ।

दुखियों का मेटो दुख दारुन, रखली उनकी लाज ।

ज्ञानो ध्यानी ऋषि मुनि देवा, सब के हो सिरताज ।

राधास्वामो परम दयाला, चरन शरन दो आज ।